विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. 30/-
आजीवन शुल्क रु. 500/-

बुद्धवर्ष 2558, श्रावण पूर्णिमा, 10 अगस्त, 2014 वर्ष 44 अंक 2

For Patrika in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं॥
धम्मपद - ३७४, भिक्खुवग्गो

साधक सम्यक सावधानता के साथ जब-जब (शरीर और चित्त) स्कंधों के उदय-व्यय रूपी अनित्यता की विपश्यना द्वारा अनुभूति करता है, तब-तब उसे प्रीति-प्रमोद (रूपी अध्यात्म-सुख) की उपलब्धि होती है। ज्ञानियों के लिए यह अमृत है।

उद्‌बोधन-पत्र

(*भारत आकर बसे परिवार के अनेक शिविरोन्मुख विपश्यी साधकों को लिखा गया एक धर्म-पत्र*), रंगून, ४-२-१९६९.

प्रिय साधको एवं साधिकाओ!

धर्म धारण करो!

साधना में कोई कठिनाई हुई हो तो उससे घबराना नहीं चाहिए। संस्कारों का मैल छँटने में कठिनाई तो होती ही है, फोड़े की मवाद निकलने की तरह। उसे धैर्यपूर्वक सह लेने में ही साधना की सिद्धि है। यह पत्र पहुँचने तक जो लोग शिविर में बैठे ही हों, उनके लाभार्थ विपश्यना पर कुछ कहूं।

यह जो सिर से पांव तक सारे शरीर में, अंग-प्रत्यंग में, तुम्हें किसी न किसी संवेदना की अनुभूति हो रही है और इस अनुभूति को तुम इसके अनित्य रूप में देख-पहचान रहे हो - यही विपश्यना है। जितनी देर तुम इस अनित्यता का दर्शन कर रहे हो, उतनी देर सत्य के साथ हो और सत्य बड़ा शक्तिशाली है। जहां सत्य है वहां विद्या का बल है, अविद्या का क्षय है। जहां सत्य है वहीं ज्ञान है, बोधि है, प्रकाश है, निर्वाण है। और जहां ये सब हैं वहां अज्ञानता, मूढ़ता, अंधकार और मोह कैसे रह सकते हैं भला? राग और द्वेष कैसे रह सकते हैं भला? और ये ही तो चित्त के मैल हैं। ये ही फोड़े हैं, ये ही फोड़े की पीप हैं। इनके निकल जाने में ही चित्त की शांति है, चित्त की विशुद्धि है। विपश्यना का मार्ग विशुद्धि का मार्ग है, जहां चित्त की अशुद्धियां दूर होती हैं। विपश्यना का मार्ग निर्वाण का मार्ग है, जहां राग, द्वेष और मोह की अग्नियों का निर्वाण होता है, यानी, वे बुझती हैं। इनके बुझने का नाम ही परम शांति है। विपश्यना हमें इसी परम शांति की ओर ले जाती है। जितनी-जितनी आग बुझ गयी, उतनी-उतनी शांति हुई। जितना-जितना मैल छँट गया, उतनी-उतनी विशुद्धि हुई। इसलिए साधना के लिए यह जो अनमोल अवसर मिला है इसका पूरा लाभ उठाना चाहिए।

सद्‌गुरु ने हमें साबुन दिया है, पानी दिया है और चित्त रूपी मैला कपड़ा हमारे पास है। अब इस साबुन-पानी का प्रयोग करके चित्त का मैल निकालने का काम हमारा है। हम कुछ काम ही नहीं करेंगे तो मैल कैसे छँटेगा और जितना काम करेंगे उतना ही तो छँटेगा। और फिर मैल अधिक होगा तो सारा मैल छँटने में समय लगेगा और कम होगा तो काम जल्द हो जायगा। सबका मैल एक जैसा नहीं है और एक जितना भी नहीं है। किसी का कैसा है, किसी का कैसा। किसी का कितना है, किसी का कितना। इसलिए हर एक साधक को अपने-अपने मैल साफ करने पर ही ध्यान रखना चाहिए, औरों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। परिश्रम करके जितना मैल छांट लोगे, उतना हल्के हो जाओगे। मैल छांटने के लिए ही तो विपश्यना है। और विपश्यना क्या है!

प्रतिक्षण सचेत रहो, जागरूक रहो, सचेष्ट रहो, सावधान रहो और देखते रहो कि जो कुछ अनुभव हो रहा है, वह प्रकृति का अनित्य स्वभाव ही अनुभव हो रहा है। इस इंद्रिय जगत के खेल में कहीं कुछ भी स्थायी नहीं है, ध्रुव नहीं है, नित्य नहीं है। सभी कुछ अनित्य है, क्षणभंगुर है, अध्रुव है, अशाश्वत है और जो अनित्य है, क्षणभंगुर है वह सुखदायी कैसे हो सकता है? वह तो सचमुच दुःखस्वरूप है। ऐसे अनित्य एवं दुःखमय तन और मन के प्रति 'मैं और मेरे' का अहंभाव रखना नितांत मूर्खता है। यह तो अनात्म है। इस तरह अनित्य, दुःख और अनात्म का साक्षात्कार करते हुए उस इंद्रियातीत अवस्था तक पहुँचना है जो निर्वाण की अवस्था है; जो नित्य, ध्रुव और शाश्वत है। परंतु उस नित्य, ध्रुव और शाश्वत अवस्था की कामना-कल्पना नहीं करनी है। ऐसा करने लग जाओगे तो विपश्यना छूट जायगी। अतः विपश्यना में लगे रहो, अनित्य के ही दर्शन करते रहो। जो मार्ग बताया है उस पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ रहो, भटक मत जाओ। कल्याण निश्चित है, मंगल निश्चित है, स्वस्ति निश्चित है।

रक्तबीज एवं प्रतीत्य-समुत्पाद

(पूज्य गुरुदेव ने यह पत्र अपने अनुज श्री राधेश्याम (एक इंजीनियर, जिन्होंने भारत में विपश्यना के प्रारंभिक प्रसारण से लेकर त्रिपिटक प्रकाशन, सीडी निर्माण एवं शोधादि में प्रचुर योगदान दिया।) के पत्रोत्तर-स्वरूप लिखा। इसमें उन्होंने विकारों एवं संस्कारों के संवर्धन और विपश्यना के अभ्यास से उनकी निर्जरा जैसे गूढ़ विषय को वैज्ञानिक आधार पर समझाया है।)

रंगून, २-३-१९६७

प्रिय राधे,

अच्छा हुआ जो तुमने अपने ३०-१२ के पत्र में 'चेन रिऐक्शन की तकनीक' लिखी। (The technique of chain reaction)। अपने यहां पुराणों में भी इसी प्रकार का एक शब्द आया है -- 'रक्तबीज।' किसी आसुरी शक्ति का एक-एक रक्त-कण जहां-जहां धरती पर गिरता है वहां-वहां अनेक आसुरी शक्तियां जन्म ले लेती हैं। जैसे एक ऐटॉम के फूटने से चेन रिऐक्शन द्वारा असंख्य ऐटॉम्स सिलसिलेवार फूट पड़ते हैं, उसी प्रकार एक रक्तबीज से असंख्य आसुरी शक्तियां जागृत हो उठती हैं। तुमने ठीक ही कहा कि एक बुरी भावना मन में आये तो अनेक दुर्भावनाओं का तांता बँध जाता है और मनुष्य उस बहाव में ऐसे उलझ जाता है कि सँभलना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए मुख्य बात यह है कि दुर्भावना रूपी प्रथम ऐटॉम को फूटने ही न दिया जाय। चेन रिऐक्शन अपने आप ही टूट जायगा। जड़ ही उखड़ जायगी तो न बेल बढ़ पायगी, न फल लग पायेंगे। दुर्भावना रूपी रक्तबीज का वपन ही नहीं होगा तो असंख्य आसुरी शक्तियों की उत्पत्ति भी नहीं हो पायेगी। इस प्रथम ऐटॉम को यानी दुर्भावना के मूल को उखाड़ फेंकने के लिए ही भगवान ने विपश्यना भावना का मार्ग ढूंढ़ निकाला।

भगवान के पूर्व और पश्चात काल में भी साधनाएं होती रही हैं। भिन्न-भिन्न आलंबनों द्वारा चित्त को एकाग्र किया जाता रहा है। लेकिन भगवान की विपश्यना भावना इन सबसे सर्वथा भिन्न है। यह भिन्नता क्या है? अन्य साधनाओं द्वारा भी चित्त शांत होता है, राग और द्वेष कम होते हैं। परिणामतः साधक आध्यात्मिक उन्नति की ऊंची सीढ़ियों पर चढ़ता है परंतु वह आध्यात्मिकता की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। आखिर क्यों?

अन्य साधना मार्गों में भी मन में उठती हुई दुर्भावनाओं को, भले वे राग संबंधी हों अथवा द्वेष संबंधी (वैसे राग और द्वेष दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं), दबा दिया जाता है। कैसे दबा दिया जाता है? एक साधक अपने किसी इष्ट देवता का स्मरण करता है, बार-बार उसका नाम जपता है। सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर मान कर उसे अपने चित्त पर स्थापित कर लेता है। जब तक साधक उस दैवी शक्ति की भावना में अभिभूत है तब तक उसका मन शांत है। शांत है तब चित्तवृत्तियां नहीं जाग्रत होतीं और चित्तवृत्तियों का शमन हो तो राग-द्वेष की वृत्तियों का शमन अपने आप हो जाता है। उस समय मन पवित्र हो जाता है। दुर्भावनाओं की जगह मन में मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के भाव जाग्रत होते हैं जो परम पवित्र ब्रह्म के चित्त के भाव हैं। इसीलिए ऐसी भावना को ब्रह्मविहार कहते हैं। भगवान ने इसे कभी बुरा नहीं कहा, बल्कि अपने शिष्यों को ब्रह्मविहार की साधना का पाठ भी पढ़ाया। परंतु मूल बात में भेद आ गया।

अन्य साधनाओं में चित्त पर (कोई काल्पनिक दैवी शक्तिनुमा) गहरा मुलम्मा चढ़ा दिया जाता है और चित्त स्वच्छ होकर चमकने लगता है। साधारण गंदे चित्त के मुकाबले में इस चित्त की कोई तुलना नहीं। क्योंकि, भले मुलम्मा ही हो, परंतु यह मुलम्मा इतना गहरा और चमकदार है कि इस पर कोई दुष्वृत्ति अपना प्रभाव डाल ही नहीं सकती। परंतु फिर भी मुलम्मा तो मुलम्मा ही है। आखिर कितना ही गहरा हो, कितना ही चमकीला हो, कल्पों बाद एक समय आता है जब वह मुलम्मा उतर जाता है और भीतर का चित्त अपने दूषित रूप में सामने आ जाता है। जब तक यह लोकीय चित्त कायम है और उस चित्त की गहराइयों में राग, द्वेष और मोह के मैल कायम हैं तब तक यह चित्त मुक्ति का कारण नहीं बन सकेगा। **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'** के सिद्धांत से इस चित्त को ब्रह्म तत्त्व प्राप्त हो सकता है, परंतु मुक्तिस्वरूप निर्वाण तत्त्व नहीं। चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाने से ब्रह्मत्व की प्राप्ति अवश्य होगी; परंतु निर्वाण तत्त्व की उपलब्धि स्वयं चित्त का निरोध होने पर ही होगी। यही मुक्ति का राजमार्ग है और इसके लिए विपश्यना ही एकमात्र संबल है।

विपश्यना वह जिसमें कि सत्य का यथाभूत दर्शन किया जाता है। इसमें किसी काल्पनिक दैवी शक्ति के नाम का, मंत्र का, रूप का अथवा अरूप का सहारा नहीं लिया जाता। इसमें अपनी ही चित्तवृत्तियों की यथाभूत स्थिति का सहारा लेते हुए शनैः शनैः उनका निरोध किया जाता है और फिर लोकीय चित्त का सहारा लेकर उसका भी निरोध कर दिया जाता है। इस प्रकार चित्तवृत्तियों का निरोध कर लेने पर, और फिर लोकीय चित्त का निरोध कर लेने पर, लोकोत्तर निर्वाण की उपलब्धि हो जाती है। क्योंकि यहां कल्पना का अथवा असत्य का सहारा नहीं लिया जाता, इसलिए कोई मिथ्यादृष्टि पास नहीं फटकती। किसी अनित्य सत्ता को नित्य मान कर उसका सहारा लेना, दुःख-सत्य को सुख और आनंद मान कर उसका सहारा लेना, अनात्म स्थिति को कूटस्थ, अचल, ध्रुव और शाश्वत आत्म-स्थिति मान कर उसका सहारा लेना विपश्यना मार्ग में सर्वथा वर्जित है। यहां तो स्वयं अपनी यथाभूत अनुभूतियों के आधार पर ही साधना अवलंबित है। यहां तो केवल सत्य का आलंबन है, सत्य का ही आधार है। सत्य से बढ़ कर किसी दूसरी सत्ता को केवल अंधश्रद्धा के बल पर स्वीकार नहीं किया गया है।

यह सत्य की ही शक्ति है जो मिथ्या भ्रांति को दूर करती है, असत्य को दूर हटाती है, अंधकार और क्लेशों को दूर हटाती है, चित्त के मैलों को दूर हटाती है। चित्त की गहनतम गहराइयों तक जमे हुए मैल की परतों को उखाड़ कर बाहर फेंकती है और इस प्रकार चित्त को सही माने में विरज विमल कर देती है। केवल बाहर-बाहर सफाई-चिकनाई और चमक-दमक का मुलम्मा नहीं चढ़ाती बल्कि बाहर-भीतर सर्वत्र सफाई कर देती है। जिस प्रकार सारहीन चित्तवृत्तियों का निरोध कर देती है उसी प्रकार सारहीन लोकीय चित्त का भी निरोध कर देती है। वही स्थिति तो निर्वाण की स्थिति है। निर्वाण आखिर क्या है? यह जो राग, द्वेष और मोह रूपी अग्नि प्रतिक्षण जल रही है-- इसका निवृत्त हो जाना, इसका सर्वथा बुझ जाना ही तो निर्वाण है। जब केवल चित्तवृत्तियों के निरोध से इस अग्नि की लपटें उठनी बंद हो गयीं और जलते हुए अंगारों पर राख की मोटी परत जम गयी, तब लगता है कि सब कुछ शमित हो गया, हम मुक्त हो गये। परंतु कालांतर में जब भी वह राख की परत अनित्य होने के कारण क्षीण हो जाती है तब धधकते हुए अंगारे की भांति चित्त फिर अपना काम करने लगता है। फिर राग और द्वेष रूपी चित्तवृत्तियां लपटों की तरह उठने लगती हैं और फिर जन्म-मरण का चक्कर चल पड़ता है। उच्चतम ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त हुआ मानव वहां से च्युत होकर ३१ लोकों में से किसी एक लोक में प्रतिसंधि ग्रहण करता है और फिर नये-नये कर्मों में उलझ कर नये-नये संस्कारों को जन्म देकर, लोकों के चक्कर में ही उलझा रह जाता है। इस प्रकार ब्रह्मविहारी होकर भी, स्वयं ब्रह्म होकर भी, प्राणी नितांत मुक्त अवस्था को प्राप्त नहीं ही कर पाता।

मैं मूल प्रश्न से जरा दूर चला गया। परंतु उपर्युक्त तथ्य ठीक से समझ लेने पर ही तुम्हारे प्रश्न का समाधान सरल होगा। जैसे कि ऊपर कहा, विपश्यना सत्य के दर्शन का नाम है और सत्य वह जो साधक को प्रत्यक्ष रूप से स्वयं अनुभूत होता चला जाय। अतः साधना की प्रारंभिक अवस्था में आनापान द्वारा चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करा लेने के बाद जब प्रज्ञा के चक्षुओं द्वारा विपश्यना की भावना आरंभ करते हैं तब पहले-पहल कायानुपश्यना करते हुए भीतर ही भीतर सारे शरीर का दर्शन कर लेते हैं। अब उसी काया को आधार बना कर वेदनानुपश्यना आरंभ होती है। शरीर में जहां कहीं भी, जैसी भी सुखमयी अथवा दुःखमयी अथवा असुख-अदुःखमयी वेदना अनुभूत होती है, उसकी विपश्यना (विदर्शना) करते चलते हैं। वेदनाओं की अनुपश्यना करते-करते, दर्शन करते-करते स्वतः चित्त का दर्शन करने लगते हैं और जब ऐसा होता है तभी 'धम्मानुपश्यना' होती है। प्रकृति के सत्य स्वभाव का दर्शन होता है तभी लोकोत्तर धर्म यानी निर्वाण का भी दर्शन होता है। हम देखते हैं कि कायानुपश्यना भी केवल आधार है। मुख्य साधना तो वेदनानुपश्यना और चित्तानुपश्यना की ही है और गुरुजी के विशुद्धि-मार्ग में यही हमें सिखायी जाती है। वेदनानुपश्यना क्या है? सिर से पांव तक विपश्यना करते हुए जहां कहीं हमें सनसनाहट मालूम हुई, गर्मी मालूम हुई, ठंड मालूम हुई, पीड़ा मालूम हुई, प्रीति और आनंद की लहरें उठती हुई मालूम हुईं, भारीपन मालूम हुआ अथवा फूल की तरह हल्कापन महसूस हुआ-- ये सभी तो भिन्न-भिन्न वेदनाएं हैं, भिन्न-भिन्न अनुभूतियां हैं और साधक इन सब को एक ही भाव से देखता है और वह भाव है सत्य का भाव।

कैसा सत्य? यही कि सभी वेदनाएं अनित्य हैं। न दुःख की पीड़ा नित्य है, न आनंद की लहरें; न अग्नि की-सी जलन नित्य है और न हिमानी की-सी शीतलता। सारी अवस्थाएं परिवर्तनशील हैं, क्षणभंगुर हैं, नाशवान हैं, प्रतिक्षण भंगमान हैं। अतः विपश्यना के लिए वे भिन्न-भिन्न वेदनाएं आधार बनती हैं परंतु मूलतः दर्शन अनित्यता का ही होता है। हम देखते हैं कि सारी लोकीय अवस्थाएं अनित्य हैं, नाम और रूप अनित्य हैं, जो कुछ भी कृत है यानी किसी के द्वारा किया गया है, बनाया गया है, वह संस्कृत है, इसलिए अनित्य है। जो बनता है वह बिगड़ने के लिए ही बनता है। जो कभी नहीं बनता वही कभी नहीं

बिगड़ता। यानी जो अजन्मा है वही अमर है। अन्यथा ये सारे संस्कार, सारी वेदनाएं कृत हैं, संस्कृत हैं इसीलिए अनित्य हैं। हम इसी अनित्यता रूपी सत्य का दर्शन करते चलते हैं। भगवान ने कहा है --

सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया।।

-- (थेरगाथापाळि, १५.१.६७६)

- जब हम प्रज्ञा की आंखों से इस सत्य का दर्शन कर लेते हैं कि सारे संस्कार अनित्य हैं, तब सारे दुःख अपने आप उखड़ जाते हैं, निर्मूल हो जाते हैं। ऐसा है भगवान का विशुद्धि मार्ग!

जब तक चित्त की अतल गहराइयों में राग, द्वेष और मोहजन्य एक भी संस्कार दबा रह जायगा तब तक **''निब्बिन्दति दुक्खे''** की स्थिति नहीं होगी। समस्त दुःखों के निर्मूल होने की स्थिति नहीं होगी। ऊपर का मुलम्मा अंदर के मैल को दबा भले ले, परंतु उसे निर्मूल नहीं कर सकता। यह वेदनानुपश्यना एवं चित्तानुपश्यना ही है जो चित्त के क्लेशों को जड़ से उखाड़ कर उसे सही माने में विरज और विमल कर देती है। अब हम देखें कि यह कैसे होता है?

बोधि प्राप्त करने पर भगवान ने जिस सत्य का अनुलोम-प्रतिलोम निरीक्षण किया वह यही था कि प्रत्येक संस्कृत अवस्था किसी कारण से ही उद्‌भूत होती है। उस कारण के निरुद्ध होते ही वह अवस्था भी निरुद्ध हो जाती है। इसे ही भगवान ने प्रतीत्य-समुत्पाद कहा, यानी, यह होने से यह हो जाता है और इसके निरुद्ध हो जाने से यह भी निरुद्ध हो जाता है। कैसे?

उन्होंने कहा-- **''अविज्जापच्चया सङ्खारा''** यानी, अविद्या होने से ही संस्कार उत्पन्न होते हैं और ''**सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं**'' यानी, संस्कार के उत्पन्न होने से विज्ञान (चैतन्य) उत्पन्न होता है। और **''विञ्ञाणपच्चया नाम-रूपं''** यानी, विज्ञान होने से ही नाम और रूप का संयोजन होता है। **''नाम-रूपपच्चया सळायतनं''** यानी, नाम-रूप का संयोजन हुआ तो आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा और मन रूपी छह इंद्रियां उत्पन्न होंगी। और फिर **''सळायतनपच्चया फस्सो''** यानी, जहां छह इंद्रियां उत्पन्न हुईं, वहीं इनके विषयों से संपर्क, यानी, स्पर्श होगा ही। आंख का रूप से, कान का शब्द से, नाक का गंध से, जिह्वा का रस से, त्वचा का किसी भी स्प्रष्टव्य पदार्थ से और मन का विचारों से स्पर्श होगा ही। और फिर कहा-- **''फस्सपच्चया वेदना''** यानी, स्पर्श के कारण से ही वेदना उत्पन्न होती है।

अब प्रतीत्य-समुत्पाद की शृंखला को एक बार रोक कर हम बात को जरा स्पष्ट समझ लें कि आंख से जो रूप दिखाई देता है वह केवल रूप मात्र है। इसी प्रकार शब्द केवल शब्द-मात्र, गंध केवल गंध-मात्र और रस केवल रस-मात्र है आदि-आदि। अतः इंद्रियों द्वारा इनके स्पर्श से जो वेदना की अनुभूति हुई वह केवल वेदना-मात्र है। अच्छी या बुरी वेदना नहीं। वेदनानुपश्यना करते हुए हम विभिन्न वेदनाओं को अच्छी या बुरी वेदना न मानते हुए उनको उनके सत्य रूप में देखते हैं कि वेदना तो वेदना है। भले जलने की वेदना हो, शीतलता की वेदना हो, पीड़ा की वेदना हो अथवा आनंद की वेदना हो। जो भी वेदना है वह संस्कारजन्य है और संस्कार तो अनित्य है। अर्थात जिसका मूल अनित्य है वह स्वयं भी अनित्य है और हमें इस अनित्यता की स्वयमेव अनुभूति भी होती है। कोई वेदना चिरस्थायी नहीं होती। सभी परिवर्तनशील हैं, भंगमान हैं। अतः हम अपने भीतर अनुभूत की हुई एक-एक वेदना को वेदना के रूप में नहीं, बल्कि उसके सत्यस्वरूप अर्थात अनित्यता के स्वरूप में देखते हैं। साधना करते हुए आरंभ में यह काम सरल नहीं होता। अधिकांश साधक वेदना को उसके सुखमय स्वरूप में अथवा दुःखमय स्वरूप में ही देखने लगते हैं। ऐसा न करके उसके अनित्य स्वरूप को देखने का अभ्यास कराया जाता है। ऐसा क्यों कराया जाता है? इसे समझने के लिए हम प्रतीत्य-समुत्पाद की आगे की कड़ियां देखें।

आगे कहा है-- **''वेदनापच्चया तण्हा''** यानी, वेदना के कारण ही तृष्णा उत्पन्न होती है। यही सबसे गहन बात है। जैसे ही हमने वेदना को उसके अच्छे या बुरे रूप में मान लिया वैसे ही उसके प्रति आकर्षण या विकर्षण का भाव जाग्रत हुआ। चक्षु ने जैसे ही कोई अच्छा रूप देखा, कानों ने जैसे ही कोई मधुर श्रुत-प्रिय शब्द सुना, वैसे ही उसके प्रति राग उत्पन्न हुआ, ''मैं, मेरे'' का भाव उत्पन्न हुआ, तृष्णा उत्पन्न हुई। जी चाहा कि इसे देखते ही जायँ, सुनते ही जायँ। क्योंकि हम उस वेदना के सत्य स्वरूप को भूल गये। उसके अनित्य स्वभाव को भूल गये। उसे स्थायी मान कर उसके लिए लालायित हो गये। सुखमयी वेदना तृष्णा का कारण हुई। ऐसे ही अप्रिय दुःखमयी वेदना भी तृष्णा का कारण हुई। एक ने राग उत्पन्न किया तो दूसरी ने द्वेष। दोनों तृष्णा के ही रूप हैं, आत्मभाव हैं। अपने आप के प्रति तृष्णा संयोजन है, तभी अपने लिए प्रिय वस्तु पाने की लालसा और अप्रिय वस्तु को दूर रखने की आकांक्षा है- दोनों ही आकांक्षाएं हैं, तृष्णाएं हैं। और जैसे ही तृष्णा जाग्रत हुई वैसे ही **''तण्हापच्चया उपादानं''** माने तृष्णा के कारण जलावन उत्पन्न हुआ। अब जलने की सामग्री मिल गयी। अग्नि को बनाये रखने के लिए लकड़ियां मिल गयीं, घृत मिल गया और **''उपादानपच्चया भवो''** -- जब तक ये जलावन कायम हैं, तब तक भव कायम है ही, संस्कार कायम है ही। फिर कहा -- **''भवपच्चया जाति''** -- भव है तो जाति है यानी पुनः जन्म है। और **''जातिपच्चया जरा-मरणं सोक-परिदेव-दुक्ख-दोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति''** यानी, जहां जन्म हुआ वहां मृत्यु अवश्यंभावी है, शोक, परिदेव, रोना-पीटना, विलाप करना - यह सब कुछ अवश्यंभावी है, और तभी कहा -- **''एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होती'ति''** -- माने इस प्रकार समग्र दुःखस्कंध ही उठ खड़ा होता है।

अतः सारे दुःखों की जड़ में वेदना के बाद उत्पन्न होने वाली तृष्णा ही है। और तृष्णा तब होती है जब हम वेदना को वेदना के रूप में न देख कर उसकी अच्छाई या बुराई को देखते हैं; उसकी ओर आकर्षण या विकर्षण पैदा करते हैं। ''मैं, मेरे'' का भाव कायम रखते हुए उसे प्रिय अथवा अप्रिय मान कर चलते हैं। इसे ही नष्ट कर देने के लिए सत्यदर्शिनी विपश्यना की भावना की जाती है। शरीर के भीतर जैसे ही कोई वेदना जाग्रत हो, उसके प्रति ''मैं, मेरे'' के भाव न उठने दें। तुरंत ही उसे अनित्य रूप में देखें। सचमुच, यह बहुत सरल काम नहीं है। परंतु निश्चय ही अभ्यासजन्य है, अभ्यास-प्राप्य है।

विपश्यना द्वारा इस प्रकार प्रत्येक वेदना को यानी प्रत्येक चित्तवृत्ति को अनित्य समझ लेने का स्वभाव जैसे-जैसे दृढ़ होता जाता है, वैसे-वैसे व्यवहार जगत में भी, जैसे ही कोई दुर्भाव मन में जाग्रत हुआ, तत्क्षण उसे अनित्य मान कर वहीं उसका शमन कर दिया तो विस्तार नहीं होने पाता। ऐटॉमिक चेन रिऐक्शन (Atomic chain reaction) एक ऐटॉम से आगे सरक नहीं पाता। रक्तबीज अनंत दुःशक्तियों की सृष्टि कर सकने में असमर्थ हो जाता है। ऐसी है भगवान की विपश्यना! और इसीलिए यह सभी प्रकार की साधनाओं में सर्वोपरि है। दुःख की जड़ पर सीधा प्रहार करती है। उसे मूल से उखाड़ फेंकती है। उसे निर्बीज कर देती है। इसीलिए निर्वाण की प्राप्ति का सीधा सरल राजमार्ग है। इसी आस्था और विश्वास के साथ हमें इस मार्ग पर कदम-कदम चलना है। सचमुच इस मार्ग पर बढ़ा हुआ प्रत्येक कदम अगले कदम को बढ़ने के लिए प्रेरित करेगा। दुष्ट मार के खिंचाव को कम करेगा और धीरे-धीरे परंतु दृढ़तापूर्वक लक्ष्य तक पहुँचा ही देगा।

विपश्यना का नियमित अभ्यास करने में ही सब का मंगल समाया हुआ है, सब का कल्याण समाया हुआ है।

कल्याणमित्र,
सत्य नारायण गोयन्का.

मृत्यु मंगल

❁ (१) श्रीमती कौशल्याबेन नटवरलाल पारिख का गत ५ जुलाई को हृदयगति रुक जाने से देहांत हो गया। अपने पति के साथ ये प्रारंभिक दिनों में धर्म से जुड़ीं और अनेक प्रकार से धर्मसेवा में भागीदार हुईं। दोनों ने ही विपश्यनाचार्य बन कर साधकों की अतुलनीय सेवा की। धर्म-परिवार की ओर से उनके प्रति श्रद्धांजलि एवं मंगल मैत्री। →

Registered No. NSK/235/2012-2014

WPP Postal License No. AR/Techno/WPP-05/2012-2014

❁ (२) प्रसिद्ध उद्योगपति और समाजसेवी **श्री श्रीराम तापड़िया** २२ जुलाई को दिवंगत हुए। वे पहले व्यक्ति थे जो भारत में विपश्यना सीख कर बरमा गये और सयाजी ऊ बा खिन के सान्निध्य में साधना करके उन्हें वचन दिया कि भारत में विपश्यना केंद्र की स्थापना में सहयोग देंगे। सयाजी के निधन के बाद 'सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट' की स्थापना हुई और उसके संस्थापक ट्रस्टी के रूप में उन्होंने धम्मगिरि के प्रथम चरण का निर्माणकार्य पूरा करवाया और जीवन के अंतिम क्षणों तक वे यहां के भोजनालय का कार्यभार विधिवत देखते रहे। उन्हें धर्म-परिवार की श्रद्धांजलि एवं मंगल मैत्री। ☆

अतिरिक्त उत्तरदायित्त्व

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री अशोक खोब्रागडे, (धम्मगोंद, गोंदिया वि. केंद्र के केंद्र-आचार्य की सहायता)

नये उत्तरदायित्त्व

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री विनय दहाट, (विदर्भ के समन्वयक क्षेत्रीय आचार्य को कार्यक्रम निर्धारण में सहायता तथा प्रशिक्षण सामग्री की देखभाल)

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

१. श्रीमती कनक प्रभा, बंगलूरु
२-३. श्री हरेश एवं श्रीमती हर्षा ढोलिया, मुंबई
४. श्री शंभावी कारखानिस, पुणे
५. श्री रामभाऊ मेश्राम, नागपुर
६. श्री विजय अग्रवाल, गोरखपुर
७. श्री चरण सिंह, गाज़ियाबाद
८. श्री संतोष कुमार शर्मा, दिल्ली
9. Mrs. Yu Ling LI, Taiwan
10. Ms. Saloua Chaker, France
11. Mrs. Panna Vyas, Canada
12-13. Mr. Karim Chalakani & Mrs. Erika Cubillos, Mexico

बालशिविर शिक्षक

१. श्री उदयकिरन कुलकर्णी, बंगलूरु
२. श्री देवधारी दास, भुबनेश्वर, उड़ीसा
३. श्री रवीन्द्र कुमार जैना, गंजाम, ''
४. डॉ. सत्यब्रत दास, पश्चि मेदिनीपुर, बंगाल. ५. श्री सौमेंद्रनाथ मुंसी, कोलकाता
६. श्री अनूप बरुआ, कोलकाता
७. श्री विजय प्रताप सिंह, वाराणसी, उ.प्र.
८. श्रीमती सरताज कुमारी, बुलंदशहर, उ.प्र.
९. श्री शशिपाल सिंह, बुलंदशहर, उ.प्र.
१०. श्री होतीलाल विद्यार्थी, गाज़ियाबाद, उ.प्र.
11. Ms Ineke Bos, Netherlands.

ग्लोबल विपश्यना पगोडा, मुंबई में वर्ष २०१४ का सघन पालि पाठ्यक्रम

१०-१० से १०-१२-१४ (आवासीय ६० दिवसीय सघन पालि-अंग्रेजी पाठ्यक्रम)

आवश्यक योग्यताएं– जिन्होंने तीन-दस-दिवसीय तथा एक सतिपट्ठान शिविर किया है, जो गत एक वर्ष से नियमित रूप से विपश्यना का अभ्यास तथा पांच शीलों का पालन कर रहे हैं – वे आवेदन कर सकते है। क्षेत्रीय आचार्य की संस्तुति आवश्यक है।

अर्हताः – आवेदक कम से कम १२ वीं कक्षा उत्तीर्ण हों। उनके लिए दीवाली की छुट्टी में एक दस-दिवसीय विपश्यना शिविर करना अनिवार्य होगा। अधिक जानकारी के लिए– (१) विपश्यना विशोधन संस्थान – कार्या. ३३७४७५६०, (२) श्रीमती वलजीत लांबा मो. ०९८३३५१८९७९, (३) सुश्री राजश्री मो. ९००४६९८६४८, (४) डा. (श्रीमती) शारदा संघवी मो. ९२२३४६२८०५ ☆

पूज्य गुरुदेव की प्रथम पुण्य-तिथि के उपलक्ष्य में एक-दिवसीय महाशिविर एवं संघदान

शरद पूर्णिमा एवं **पूज्य गुरुदेव की पुण्य-तिथि** के उपलक्ष्य में **रविवार, 28 सितंबर २०१४ को पूज्य माताजी की उपस्थिति में 'ग्लोबल विपश्यना पगोडा' में एक दिवसीय महाशिविर होगा। इसके अंत में (३ बजे से) पूज्य गुरुदेव के म्यंमा में अस्थि-विसर्जन समारोह की झांकी (विडियो) दिखायी जायगी। इस उपलक्ष्य में प्रातः १० से ११ बजे के बीच संघदान का आयोजन किया गया है। इस संघदान में भाग लेकर दान-पारमी बढ़ाने के इच्छुक कृपया 'ग्लोबल विपश्यना फाउंडेशन' के निम्न लोगों से संपर्क करें-- (१) श्री विपिन मेहता, Tel.022-33747510; (2) श्री डेरिक पेगाडो, Tel.022-33747512. Email: audits@globalpagoda.org; Tel.: 022-33747501. शिविर-समयः** प्रातः **11** बजे से अपराह्न **4** बजे तक. यहां 3 बजे के अस्थि-विसर्जन विडियो कार्यक्रम में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। बुकिंग के लिए कृपया निम्न फोन नंबरों या ईमेल से शीघ्र संपर्क करें। कृपया बिना बुकिंग कराये न आयें और **समग्गानं तपोसुखो**- सामूहिक तप-सुख का लाभ उठाएं। **संपर्कः** 022-28451170 022-337475-01/43/44-Extn. 9, **(फोन बुकिंगः** प्रातः **11** से सायं **5** तक, प्रतिदिन) **Online Registration: www.oneday.globalpagoda.org**

दोहे धर्म के

सुखद-दुखद संवेदना, विषय स्पर्श-संयोग।
देख अनित्य स्वभाव को, दूर किए भवरोग॥

राग जगे तो झट जगे, मन अनित्य का बोध।
होवे राग निरुद्ध ज्यूं, होवे दुःख निरोध॥

इस अनित्य संसार में, दुख का दिखे न अंत।
जब अंदर प्रज्ञा जगे, सुख जग जाय अनंत॥

प्रतिक्षण समता पुष्ट हो, प्रतिक्षण रहे निसंग।
रहे अलिप्त अनित्य से, पकें बोधि के अंग॥

बिन प्रयास होता रहे, अनित्यता का बोध।
सतत बोध से शोध हो, होवे दुःख निरोध॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा०) लिमिटेड

८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोनः 2493 8893, फैक्सः 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

काया चित्त अनित्य है, अंतर जगै प्रबोध।
इसी प्रबल प्रग्या जगै, होवै दुक्ख निरोध॥

साधक करै विपस्सना, देख अनित्य सुभाव।
अपणी काया चित्त रा, बहता दिखै बहाव॥

सांस छुटै, देही छुटै, छुटै न समता नेक।
जागै बोध अनित्य रो, जागै बुद्ध बिवेक॥

जागै धरम विपस्सना, अनित्यता रो ग्यान।
रोम रोम चेतन हुवै, प्रगटै पद निरवाण॥

गुरुवर तेरै पुन्य रो, कैसो प्रबळ प्रताप।
जागै बोध अनित्य रो, दूर करण भवताप॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी

सर्वो स्टॉकिस्ट - इंडियन ऑईल, ७४, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.६, अजिंठा चौक, जलगांव - ४२५ ००३, फोन. नं. ०२५७-२२१०३७२, २२१२८७७
मोबा.०९४२३१८७३०१, Email: morolium_jal@yahoo.co.in
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-422 403, दूरभाष : (02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, 69- बी रोड, सातपुर, नाशिक-422 007. **बुद्धवर्ष 2558, श्रावण पूर्णिमा, 10 अगस्त, 2014**

वार्षिक शुल्क रु. **30/-,** US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. **500/-,** US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71. Registered No. NSK/235/2012-2014**

WPP Postal Licence No. AR/Techno/WPP-05/2012-2014
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086, 243712,
243238. **फैक्स :** (02553) 244176
Email: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org